



INDIAN JOURNAL OF LEGAL AFFAIRS AND RESEARCH

Peer-reviewed, open-access, refereed journal

IJLAR

+91 70421 48991
editor@ijlar.com
www.ijlar.com

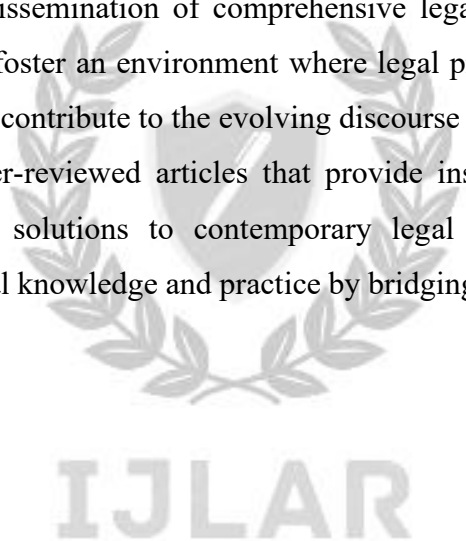
DISCLAIMER

The views and opinions expressed in the articles published in the Indian Journal of Legal Affairs and Research are those of the respective authors and do not necessarily reflect the official policy or position of the IJLAR, its editorial board, or its affiliated institutions. The IJLAR assumes no responsibility for any errors or omissions in the content of the journal. The information provided in this journal is for general informational purposes only and should not be construed as legal advice. Readers are encouraged to seek professional legal counsel for specific legal issues. The IJLAR and its affiliates shall not be liable for any loss or damage arising from the use of the information contained in this journal.

IJLAR

Introduction

Welcome to the Indian Journal of Legal Affairs and Research (IJLAR), a distinguished platform dedicated to the dissemination of comprehensive legal scholarship and academic research. Our mission is to foster an environment where legal professionals, academics, and students can collaborate and contribute to the evolving discourse in the field of law. We strive to publish high-quality, peer-reviewed articles that provide insightful analysis, innovative perspectives, and practical solutions to contemporary legal challenges. The IJAR is committed to advancing legal knowledge and practice by bridging the gap between theory and practice.



Preface

The Indian Journal of Legal Affairs and Research is a testament to our unwavering commitment to excellence in legal scholarship. This volume presents a curated selection of articles that reflect the diverse and dynamic nature of legal studies today. Our contributors, ranging from esteemed legal scholars to emerging academics, bring forward a rich tapestry of insights that address critical legal issues and offer novel contributions to the field. We are grateful to our editorial board, reviewers, and authors for their dedication and hard work, which have made this publication possible. It is our hope that this journal will serve as a valuable resource for researchers, practitioners, and policymakers, and will inspire further inquiry and debate within the legal community.

IJLAR

Description

The Indian Journal of Legal Affairs and Research is an academic journal that publishes peer-reviewed articles on a wide range of legal topics. Each issue is designed to provide a platform for legal scholars, practitioners, and students to share their research findings, theoretical explorations, and practical insights. Our journal covers various branches of law, including but not limited to constitutional law, international law, criminal law, commercial law, human rights, and environmental law. We are dedicated to ensuring that the articles published in our journal adhere to the highest standards of academic rigor and contribute meaningfully to the understanding and development of legal theories and practices.

IJLAR

समलैंगिकता, सहमति और विधि: भारतीय समाज में यौन संबंधों का बदलता परिदृश्य

लेखक - प्रगति श्रीवास्तव (शोधार्थी)

एवं डॉ. सृजन पट्टेरीया (सहायक प्राध्यापक)¹

सारांश:

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय समाज में समलैंगिकता, विधिक सुधारों और सहमति के अंतर्संबंधों का एक अत्यंत गहन, बहुआयामी और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो, भारतीय समाज में यौन संबंधों को मुख्य रूप से विपरीतलिंगी, पितृसत्तात्मक और प्रजनन-केंद्रित दृष्टिकोण से ही मान्यता प्राप्त रही है। सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक 'नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ' (2018) निर्णय ने औपनिवेशिक काल की भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को आंशिक रूप से निरस्त कर वयस्कों के बीच एकांत में पूर्ण सहमति से बने समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया। हालांकि, इन युगांतरकारी विधिक सुधारों के बावजूद, सामाजिक मानसिकता, नागरिक अधिकारों (जैसे समलैंगिक विवाह, संपत्ति का उत्तराधिकार, और बच्चा गोद लेने की कानूनी मान्यता) और वास्तविक सहमति के व्यावहारिक क्रियान्वयन के बीच एक व्यापक और गहरी खाई आज भी विद्यमान है। यह शोध पत्र विधिक अधिकारों की सैद्धांतिक घोषणा (विधितः सत्य) और उनके जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन (वस्तुतः सत्य) के बीच के इसी अंतराल का समाजशास्त्रीय, संवैधानिक और न्यायशास्त्रीय अध्ययन करता है। यह अध्ययन इस बात की सूक्ष्म पड़ताल करता है कि न्यायपालिका द्वारा स्थापित 'संवैधानिक नैतिकता' को किस प्रकार भारतीय जनमानस की 'सामाजिक नैतिकता' में परिवर्तित किया जा सकता है, जिससे एक सही मायनों में समावेशी समाज का निर्माण संभव हो सके। प्रस्तुत शोध, अकादमिक मानकों और विधि पत्रिकाओं के कठोर दिशा-निर्देशों का अनुपालन करते हुए, वर्तमान विधिक शून्यता को भरने हेतु नीतिगत अनुशंसाएं भी प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द: समलैंगिकता, यौन सहमति, नवतेज सिंह जौहर, धारा 377, विधिक सुधार, सामाजिक परिदृश्य, संवैधानिक नैतिकता

¹ डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

1. परिचय

1.1 समलैंगिकता, सहमति और विधि की अंतर्संबंधी रूपरेखा

भारतीय विधिक, संवैधानिक और सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वायत्तता, निजता के अधिकार तथा यौन संबंधों के बदलते स्वरूप ने समसामयिक कानूनी विमर्श को एक नई और अत्यंत प्रगतिशील दिशा प्रदान की है। ऐतिहासिक रूप से, पारंपरिक भारतीय समाज में विवाह, कामुकता और लैंगिक पहचान को कठोर सामाजिक-धार्मिक मानदंडों और संस्थागत पितृसत्तात्मक संरचनाओं के अंतर्गत विनियमित किया जाता रहा है। इस पारंपरिक और रूढ़िवादी व्यवस्था में, यौन संबंधों का एकमात्र वैध उद्देश्य वंश-वृद्धि और सामाजिक संस्थाओं को सुचारू रूप से बनाए रखना माना गया। इसके परिणामस्वरूप किसी भी प्रकार के गैर-पारंपरिक, गैर-प्रजननमूलक या समलैंगिक संबंधों को न केवल एक गंभीर सामाजिक विचलन माना गया, बल्कि उन्हें धार्मिक और नैतिक रूप से भी पूर्णतः वर्जित घोषित कर दिया गया।

औपनिवेशिक काल के दौरान, इस सामाजिक रूढ़िवादिता को तत्कालीन ब्रिटिश शासकों द्वारा विधायी सुदृढ़ता प्रदान की गई। वर्ष 1860 में, ब्रिटिश न्यायविदों द्वारा प्रारूपित भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के माध्यम से समलैंगिकता को 'प्रकृति के आदेश के विरुद्ध' मानते हुए कठोर अपराधीकरण के दायरे में ला दिया गया। इस दमनकारी कानून ने एक सदी से भी अधिक समय तक यौन और लैंगिक अल्पसंख्यक समुदाय को सामाजिक और विधिक हाशिए पर धकेलने, उनके खिलाफ राज्य-प्रायोजित तथा संस्थागत हिंसा को वैध बनाने और उनके पूर्ण सामाजिक बहिष्कार को कानूनी मान्यता देने का कार्य किया। यह कानून औपनिवेशिक विक्टोरियन नैतिकता का प्रत्यक्ष थोपा हुआ रूप था, जिसने भारत की उस प्राचीन संस्कृति को भी कलंकित किया जहाँ वात्स्यायन के कामसूत्र और खजुराहो की मूर्तिकला में यौन तरलता और विविधता के प्रमाण स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

हालाँकि, इक्कीसवीं सदी के उदय के साथ आधुनिक विधिक चेतना, संवैधानिक नैतिकता और मानवाधिकारों के वैश्विक प्रसार ने कानून और सामाजिक नैतिकता के इस दमनकारी पारंपरिक संबंध को गंभीर चुनौती दी है। भारतीय न्यायपालिका ने अपने क्रमिक निर्णयों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि कानून को बहुसंख्यक वर्ग की लोक नैतिकता या क्षणिक भावनाओं के बजाय शाश्वत संवैधानिक सिद्धांतों और मौलिक अधिकारों से संचालित होना चाहिए। वर्तमान परिदृश्य में, कानून और 'सहमति' के बीच का विमर्श केवल विपरीतलिंगी संबंधों या पारंपरिक विवाह की संस्था तक सीमित नहीं रह गया है। अब सहमति को एक संकीर्ण कानूनी परिभाषा से बहुत ऊपर उठाकर 'व्यक्तिगत संप्रभुता' और 'दैहिक स्वायत्तता' के रूप में देखा जा रहा है। इसका तात्पर्य केवल किसी कृत्य के लिए यांत्रिक रूप से राजी होना मात्र नहीं है, बल्कि यह किसी भी वयस्क नागरिक द्वारा अपनी पहचान, अपने साथी और अपनी

जीवन शैली को चुनने की पूर्ण और अबाधित स्वतंत्रता का प्रतीक है। समलैंगिकता, सहमति और विधि का यह त्रिकोणीय संबंध वर्तमान में प्रत्येक नागरिक के मौलिक अधिकारों, मानवीय गरिमा और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्राप्त जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को अक्षुण्ण रखने का सबसे शक्तिशाली माध्यम बन चुका है⁴। यह नव-विमर्श दृढ़ता से यह स्थापित करता है कि राज्य या समाज को किसी भी व्यक्ति के नितांत निजी जीवन में हस्तक्षेप करने और उसकी व्यक्तिगत पसंद को अपराध घोषित करने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं है।

1.2 अंतर्निहित शोध समस्या और अध्ययन की आवश्यकता

विधिक रूप से अपराध की श्रेणी से बाहर होने के बावजूद, यौन अल्पसंख्यक समुदाय आज भी वास्तविक धरातल पर पूर्ण नागरिक अधिकारों से वंचित है। इस समुदाय को विवाह, बच्चा गोद लेने, संपत्ति के उत्तराधिकार और रोजगार में समानता जैसी बुनियादी नागरिक सुविधाओं से सुनियोजित तरीके से बाहर रखा गया। इस अध्ययन की मूल समस्या यह है कि न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित 'संवैधानिक नैतिकता' और समाज में व्याप्त 'सामाजिक नैतिकता' के बीच एक विशाल और गहरी संरचनात्मक खाई विद्यमान है। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालय अपने ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से निरंतर मानवाधिकार प्रदान कर रहे हैं, परंतु समाज के भीतर आज भी कलंक, गहरा भेदभाव और सूक्ष्म स्तर की हिंसा मौजूद है। यह शोध इसी अंतराल की गहन पड़ताल करता है कि कानूनी बदलाव किस हद तक और किस गति से सामाजिक स्वीकृति में परिवर्तित हो पाए हैं।

इस शोध की अत्यंत आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि भारतीय न्यायपालिका ने संवैधानिक सिद्धांतों की प्रगतिशील व्याख्या करते हुए समलैंगिकता को विधिक रूप से अपराध मुक्त तो कर दिया है, किंतु वैधानिक सुधारों और वास्तविक सामाजिक स्वीकार्यता के मध्य यह विसंगति आज भी एक ज्वलंत प्रश्न है। अदालती फैसलों ने समलैंगिक नागरिकों को 'अपराधी' के ठप्पे से तो मुक्त कर दिया, लेकिन उन्हें समाज में 'पूर्ण नागरिक' का दर्जा अब भी अप्राप्य है। कानून की किताबों में हुआ यह सुधार जमीनी स्तर पर सामाजिक चेतना और संस्थागत व्यवहार में पूरी तरह प्रतिबिंबित नहीं हो पाया है। अपराधमुक्ति के बावजूद समलैंगिक जोड़ों को विवाह की विधिक मान्यता, संयुक्त रूप से बच्चा गोद लेने, कर लाभ और संयुक्त बीमा जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रखा गया है। वर्ष 2023 के 'सुप्रियो बनाम भारत संघ' मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस विधिक शून्यता को और अधिक स्पष्ट रूप से उजागर करता है, जहाँ न्यायालय ने विवाह की वैधानिक मान्यता को संसद के क्षेत्राधिकार का विषय बताकर स्वयं को इससे अलग कर लिया।

इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज में 'सहमति' की समझ अभी भी काफी हद तक विपरीतलिंगी,

पितृसत्तात्मक और रूढ़िवादी ढांचों से नियंत्रित होती है। समलैंगिक संबंधों में सहमति के विधिक महत्व को समाज अक्सर अनैतिकता और विचलन के संकीर्ण चश्मे से आंका करता है। ऐसे में, मानवाधिकारों और लैंगिक समानता के सिद्धांतों के आधार पर समावेशी समाज के निर्माण हेतु यह अकादमिक अन्वेषण नितांत आवश्यक हो जाता है।

2. वैचारिक एवं संवैधानिक आधार

2.1 संवैधानिक नैतिकता का सिद्धांत और निजता का अधिकार

संवैधानिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में, डॉक्टर बी.आर. आंबेडकर द्वारा संविधान सभा की बहसों के दौरान प्रतिपादित 'संवैधानिक नैतिकता' का सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि राज्य का प्रशासन और उसका कानूनी ढांचा बहुसंख्यक समाज की क्षणिक और पारंपरिक धारणाओं पर आधारित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे संविधान में निहित न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के शाश्वत मूल्यों के आधार पर संचालित होना चाहिए। यदि समाज का एक बड़ा रूढ़िवादी वर्ग समलैंगिकता को अनैतिक मानता भी है, तब भी संवैधानिक नैतिकता के तहत राज्य का यह परम कर्तव्य है कि वह समाज के सबसे हाशिए पर खड़े अल्पसंख्यक नागरिक के मौलिक अधिकारों की भी पूर्ण रक्षा करे।

इसी संवैधानिक नैतिकता को आधार बनाते हुए 'नालसा बनाम भारत संघ' (2014) के निर्णय ने लैंगिक पहचान के स्व-निर्धारण को मौलिक अधिकार घोषित किया था। इसके पश्चात, 'के.एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ' (2017) के ऐतिहासिक निर्णय ने निजता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का अभिन्न अंग माना²। निजता के अधिकार की इस विस्तृत व्याख्या ने ही समलैंगिकता को अपराधमुक्त करने का मार्ग प्रशस्त किया, क्योंकि न्यायालय ने यह स्थापित किया कि यौन रुझान निजता और मानवीय गरिमा का एक अटूट हिस्सा है।

2.2 सहमति का बहुआयामी कानूनी और सामाजिक अर्थ

सहमति किसी भी स्वस्थ मानवीय और यौन संबंध का मूल आधारस्तंभ है। न्यायशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसका अर्थ केवल यांत्रिक रूप से स्वीकृति प्रदान करना नहीं है, बल्कि यह बिना किसी भय, दबाव, प्रलोभन या अनुचित प्रभाव के ली गई स्वतंत्र और सचेत इच्छा का प्रकटीकरण है। भारतीय विधिक ढांचे के अंतर्गत, सहमति का तात्पर्य यह है कि दोनों पक्ष अपनी पूर्ण मानसिक समझ और स्वतंत्रता के साथ किसी कृत्य के लिए राजी हुए हों। सहमति देने के लिए व्यक्ति का विधिक रूप से बालिग (वयस्क) होना अनिवार्य है। यदि सहमति डरा-धमकाकर, नशे की हालत में, या तथ्य की भूल के अंतर्गत प्राप्त की गई है, तो भारतीय दंड संहिता और नव-प्रवर्तित भारतीय न्याय संहिता इसे वैध सहमति नहीं मानती।

सामाजिक रूप से सहमति का दायरा और भी अधिक व्यापक है। यह आपसी सम्मान, निरंतर संवाद और एक-दूसरे की व्यक्तिगत सीमाओं को समझने की परिपक्वता से जुड़ा है। समाज में अक्सर सहमति को लेकर जो पितृसत्तात्मक धारणाएं आड़े आती हैं, उन्हें आधुनिक विमर्शों और समाजशास्त्रीय सिद्धांतों द्वारा निरंतर चुनौती दी जा रही है।

2.3 सैद्धांतिक ढांचा: क्वीर थ्योरी और मानवाधिकार दृष्टिकोण

यौन अल्पसंख्यक अधिकारों को समझने के लिए आधुनिक समाजशास्त्रीय और दार्शनिक सिद्धांतों का आश्रय लिया जाता है। 'क्वीर थ्योरी' (यौन विविधता का सिद्धांत) जेंडर और यौनिकता की पारंपरिक, द्विआधारी और कठोर श्रेणियों को सिरे से खारिज करता है। यह सिद्धांत स्थापित करता है कि जेंडर और यौनिकता अत्यंत तरल अवधारणाएं हैं और इन्हें प्राकृतिक रूप से किसी एक पूर्व-निर्धारित सांचे में नहीं बांधा जा सकता। इसी प्रकार, 'सामाजिक समावेशन का सिद्धांत' इस बात की वकालत करता है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी लैंगिक पहचान या यौन रुझान के कारण शिक्षा, रोजगार और समाज के मुख्यधारा के अधिकारों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। उत्तर-आधुनिकतावाद उन स्थापित सामाजिक मानदंडों पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगाता है जहाँ केवल विपरीत-लिंगीयता को ही एकमात्र सामान्य व्यवहार माना जाता है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य में, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद स्पष्ट रूप से यह मानता है कि सहमति से बने समलैंगिक संबंधों को अपराध मानना नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतराष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र का सीधा उल्लंघन है। 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' (1948) स्पष्ट करती है कि सभी मनुष्य जन्म से गरिमा और अधिकारों के मामले में स्वतंत्र और समान हैं। इसी दिशा में 'योग्याकार्ता सिद्धांत' (2006) अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और दिशा-निर्देशक दस्तावेज है, जो विशेष रूप से यौन रुझान और लैंगिक पहचान पर लागू होता है। यह दस्तावेज हर व्यक्ति की शारीरिक संप्रभुता, गोपनीयता और भेदभाव-रहित जीवन के अधिकार को पुष्ट करता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध) और अनुच्छेद 21 (गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार) इन्हीं अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों का घरेलू विधिक स्वरूप हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि जब तक समाज के सबसे हाशिए पर मौजूद व्यक्ति को समानता नहीं मिलती, तब तक वास्तविक लैंगिक समानता अधूरी है।

3. भारतीय समाज में बदलता सामाजिक परिदृश्य

3.1 अपराधमुक्ति से लेकर सामाजिक स्वीकार्यता तक की यात्रा

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐतिहासिक निर्णय के पश्चात, सामाजिक धरातल पर भारतीय समाज ने एक लंबा संक्रमण काल देखा है। धारा 377 के निरसन ने समाज में समलैंगिकता को लेकर व्याप्त 'अपराध' या 'भयानक पाप' की धारणा को काफी हद तक कम किया है। सार्वजनिक विमर्श में अब इस विषय पर मुखरता से चर्चा होने लगी है। यौनिकता और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं को लेकर भारतीय समाज का सदियों पुराना रूढ़िवादी ढांचा अब धीरे-धीरे दरक रहा है। पूर्व में, समलैंगिकता या विषमलैंगिक संबंधों से इतर किसी भी पहचान को 'मानसिक विकृति' माना जाता था। परंतु भारतीय मनोरोग चिकित्सा संघ जैसी शीर्ष संस्थाओं ने वैज्ञानिक शोधों के आधार पर स्पष्ट कर दिया है कि समलैंगिकता कोई बीमारी नहीं, बल्कि मानव कामुकता की एक अत्यंत सामान्य और प्राकृतिक विविधता है।

इस सामाजिक स्वीकृति का प्रसार यद्यपि उत्साहजनक है, किंतु यह अत्यंत असमान और खंडित भी है। महानगरों, टियर-1 शहरों और उच्च शिक्षित तबकों में जहाँ 'प्राइड मार्च' और जागरूकता अभियानों के माध्यम से इसे तेजी से अपनाया जा रहा है, वहीं ग्रामीण या अर्ध-शहरी इलाकों में आज भी अपनी वास्तविक पहचान उजागर करना एक अत्यधिक जोखिम भरा कदम है। ग्रामीण परिवेश में पितृसत्तात्मक मूल्य इतने गहरे पैठे हैं कि वहाँ यौन विविधता को परिवार के सम्मान पर कलंक माना जाता है, जिससे व्यक्ति को सामाजिक बहिष्कार और शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ता है।

3.2 परिवार, विवाह एवं संबंधों की बदलती आधुनिक अवधारणा

पारंपरिक रूप से भारतीय समाज में संबंधों की अंतिम और एकमात्र वैध परिणति पारंपरिक विवाह और संतानोत्पत्ति को माना जाता रहा है। किंतु वैश्वीकरण, शिक्षा के प्रसार और विधिक संरक्षण के साथ इस मूल अवधारणा में आमूलचूल परिवर्तन आ रहा है। यद्यपि समलैंगिक जोड़ों के लिए विवाह की वैधानिक मान्यता अभी भी न्यायपालिका और संसद के मध्य एक संघर्ष का विषय है, तथापि समाज में "सह-जीवन" (लिव-इन रिलेशनशिप) और अपनी पसंद के साथी के साथ रहने के अधिकार को अनौपचारिक स्वीकृति मिलने लगी है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम और सर्वोच्च न्यायालय की प्रगतिशील व्याख्याओं द्वारा 'विवाह की प्रकृति वाले संबंधों' को विधिक सुरक्षा प्रदान किए जाने से बिना शादी के साथ रहने वाले जोड़ों को सामाजिक संबल प्राप्त हुआ है।

इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज में 'चुनकर बनाए गए परिवार' (स्वैच्छिक परिवार) की अवधारणा तेजी से विकसित हो रही है। जब जैविक परिवार अपने बच्चों को उनकी यौन प्राथमिकता के कारण अस्वीकार कर देते हैं, तब इस समुदाय के सदस्य अपने मित्रों, सहयोगियों और साझेदारों के साथ मिलकर एक ऐसा

पारिवारिक ढांचा तैयार करते हैं, जो पारंपरिक परिवार की तरह ही भावनात्मक समर्थन और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है।

3.3 जनसंचार माध्यमों, डिजिटल युग और युवा पीढ़ी का दृष्टिकोण

इस सामाजिक और विधिक बदलाव की गति को तीव्र करने में संचार माध्यमों ने एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाई है। मुख्यधारा के भारतीय सिनेमा और डिजिटल प्लेटफॉर्म (ओटीटी) पर अब समलैंगिक किरदारों और सहमति के जटिल मुद्दों को अत्यंत संवेदनशीलता, मानवीयता और गहराई के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। यह कहानियाँ सीधे लोगों के घरों तक पहुँचकर उनके सदियों पुराने पूर्वाग्रहों को तोड़ रही हैं। डिजिटल युग ने यौन अल्पसंख्यक समुदाय को अपनी आवाज उठाने, अपने संघर्ष साझा करने और वैश्विक स्तर पर एक-दूसरे से जुड़ने के लिए अत्यंत सुरक्षित मंच प्रदान किए हैं। सोशल मीडिया ने युवाओं के बीच "सहमति" के वास्तविक अर्थ को स्थापित करने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई है। वैवाहिक बलात्कार और यौन शोषण जैसे गंभीर विषयों पर डिजिटल माध्यमों ने समाज को सोचने पर मजबूर किया है। आज की युवा पीढ़ी इस पूरे बदलाव की सबसे बड़ी ध्वजवाहक है। नई पीढ़ी के लिए किसी भी रिश्ते या यौन संबंध में सहमति सबसे महत्वपूर्ण कानूनी और नैतिक पैमाना है। वे स्थापित पुरानी पीढ़ियों के विपरीत, किसी व्यक्ति को उसकी यौन प्राथमिकता या जेंडर पहचान के आधार पर कलंकित नहीं करते, बल्कि मानवाधिकारों को सर्वोपरि मानते हुए अधिकारों के प्रति मुखरता प्रदर्शित करते हैं।

4. समलैंगिकता, सहमति और विधि: एक वैश्विक तुलनात्मक अध्ययन

विभिन्न राष्ट्रों के विधिक परिदृश्य का गहन तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारत अभी नागरिक अधिकारों की इस लंबी यात्रा के मध्य बिंदु पर खड़ा है। जहाँ कई विकसित देशों ने विधि, सहमति और विवाह को एक समरूप कानूनी ढांचा प्रदान किया है, वहीं भारत अभी भी वैधानिक और सामाजिक द्वंद्व से जूझ रहा है। नीचे दी गई तालिका प्रमुख देशों की विधिक स्थिति का एक स्पष्ट तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करती है।

देश का नाम	समलैंगिकता की अपराधमुक्ति का वर्ष	विवाह समानता/वैधानिक मान्यता का वर्ष	यौन सहमति की वैधानिक आयु	विधिक दृष्टिकोण का मुख्य आधार
कनाडा	1969	2005 (सिविल)	16 वर्ष (लैंगिक-)	चार्टर ऑफ

		मैरिज एक्ट)	तटस्थ)	राइट्स (पूर्ण मानवाधिकार संरक्षण)
यूनाइटेड किंगडम	1967 (निजी दायरे में)	2013 (मैरिज सेम सेक्स कपल्स एक्ट)	16 वर्ष (लैंगिक-तटस्थ)	संसदीय संप्रभुता द्वारा क्रमिक वैधानिक सुधार
संयुक्त राज्य अमेरिका	2003 (लॉरेंस बनाम टेक्सस)	2015 (न्यायिक) / 2022 (संसदीय कानून)	16 से 18 वर्ष (राज्यानुसार भिन्न)	संघीय न्यायपालिका और विधायी सुरक्षा का समन्वय
दक्षिण अफ्रीका	1998	2006 (सिविल यूनियन्स एक्ट)	16 वर्ष (लैंगिक-तटस्थ)	रंगभेद समाप्ति के पश्चात का प्रगतिशील संविधान
भारत	2018 (नवतेज सिंह जौहर मामला)	मान्यता अप्राप्त (विधिक शून्यता)	18 वर्ष (पॉक्सो के अंतर्गत)	न्यायिक सक्रियता बनाम संसदीय गतिरोध

4.1 वैश्विक परिदृश्यों का विस्तृत विश्लेषण

संयुक्त राज्य अमेरिका: अमेरिका में मानवाधिकारों का विकास अदालतों और राज्यों की विधायिका के बीच एक लंबे राजनीतिक संघर्ष का परिणाम रहा है। वर्ष 2003 में सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिकता को वैध घोषित किया। इसके पश्चात, वर्ष 2015 के ऐतिहासिक 'ओबेरगेफेल बनाम हॉर्जेस' निर्णय ने समलैंगिक विवाह को पूरे अमेरिका में एक मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित कर दिया। न्यायपालिका के भविष्य में संभावित रूढ़िवादी रुख की आशंकाओं को देखते हुए, वर्ष 2022 में अमेरिकी संसद ने 'रिस्पेक्ट फॉर मैरिज एक्ट' पारित कर समलैंगिक विवाह को स्थायी और अकाट्य विधायी सुरक्षा प्रदान कर दी, जो मानवाधिकारों के संरक्षण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

यूनाइटेड किंगडम: यूनाइटेड किंगडम में अधिकारों का यह विकास किसी अचानक हुई न्यायिक क्रांति से नहीं, बल्कि ब्रिटिश संसद के क्रमिक और सुविचारित कानूनों के माध्यम से हुआ है। इंग्लैंड ने बहुत पहले ही निजी दायरे में समलैंगिकता को अपराधमुक्त कर दिया था और वर्ष 2013 में पूर्ण विधिक मान्यता

प्रदान की। सहमति के मामले में भी यूके अत्यंत प्रगतिशील रहा है, जहाँ वैवाहिक बलात्कार को बहुत पहले अपराध घोषित कर दिया गया था।

कनाडा एवं दक्षिण अफ्रीका: कनाडा व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानवाधिकारों के मामले में सबसे प्रगतिशील राष्ट्रों में गिना जाता है, जहाँ तत्कालीन नेतृत्व ने यह स्पष्ट कर दिया था कि राज्य का अपने नागरिकों के शायनकक्ष में कोई कार्य नहीं है। दूसरी ओर, दक्षिण अफ्रीका का परिदृश्य संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक क्रांतिकारी है क्योंकि यहाँ बदलाव की नींव सीधे तौर पर उनके 1996 के संविधान में रखी गई थी, जिसने दुनिया में पहली बार अपने 'अधिकारों के घोषणापत्र' में स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया कि यौन प्राथमिकता के आधार पर राज्य किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं कर सकता।

5. समकालीन चुनौतियाँ और ज्वलंत विधिक अंतर्विरोध

भारतीय समाज में सुधार तो अवश्य हुए हैं, परंतु वास्तविक धरातल पर आज भी अनेक जटिल चुनौतियाँ मौजूद हैं, जो विधिक अधिकारों और सामाजिक वास्तविकता के मध्य की गहरी खाई को प्रदर्शित करती हैं। इन चुनौतियों को समझना नीति-निर्माण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

5.1 समान-लिंग विवाह का विधिक गतिरोध एवं नागरिक वंचना

वर्ष 2018 में अपराधमुक्त किए जाने के उपरांत, विवाह की कानूनी मान्यता भारतीय न्यायपालिका और समाज के समक्ष सबसे बड़ा और जटिल प्रश्न बनी हुई है। वर्ष 2023 के ऐतिहासिक 'सुप्रियो बनाम भारत संघ' मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने यद्यपि समलैंगिक व्यक्तियों के अधिकारों की सैद्धांतिक रक्षा की, किंतु सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया कि विवाह का अधिकार कोई 'पूर्ण मौलिक अधिकार' नहीं है। न्यायालय ने विशेष विवाह अधिनियम की व्याख्या को समलैंगिक जोड़ों तक विस्तारित करने से इनकार करते हुए स्पष्ट किया कि इस प्रकार का संस्थागत और सामाजिक बदलाव करना भारत की संसद का विशेषाधिकार है, न्यायपालिका का नहीं।

इस न्यायिक संयम से देश में एक गंभीर विधिक शून्यता उत्पन्न हो गई है। विवाह को वैधानिक मान्यता न मिलने के कारण समलैंगिक जोड़ों को कई बुनियादी नागरिक अधिकारों से प्रत्यक्ष रूप से वंचित होना पड़ रहा है। वे जीवनसाथी के साथ संयुक्त बैंक खाता खोलने, जीवन बीमा में एक-दूसरे को नामांकित करने, संपत्ति के स्वतः उत्तराधिकार, और सबसे महत्वपूर्ण—बच्चों को संयुक्त रूप से गोद लेने या सरोगेसी का लाभ उठाने से पूरी तरह वंचित हैं। यह संसदीय बनाम न्यायिक गतिरोध समानता के मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 14) पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगाता है।

5.2 सहमति की आयु और पॉक्सो (POCSO) अधिनियम के अंतर्विरोध

भारतीय आपराधिक विधि में "यौन सहमति" और उसकी आयु को लेकर कई व्यावहारिक अंतर्विरोध विद्यमान हैं। यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (पॉक्सो) अधिनियम के तहत भारत में यौन सहमति की वैधानिक आयु 18 वर्ष निर्धारित है। इसका सबसे बड़ा और चिंताजनक व्यावहारिक प्रभाव तब देखने को मिलता है जब 16 से 18 वर्ष के किशोर पूर्ण आपसी सहमति से शारीरिक संबंध बनाते हैं। कानून की दृष्टि में इस प्रकार की सहमति का कोई विधिक मूल्य नहीं होता और यह कृत्य सीधे तौर पर 'वैधानिक बलात्कार' की गंभीर श्रेणी में आ जाता है। भारत का विधि आयोग (283वीं रिपोर्ट) और विभिन्न उच्च न्यायालय इस विसंगति पर गहरी चिंता व्यक्त कर चुके हैं, क्योंकि इससे किशोरों के प्रेम प्रसंगों का अनजाने में अपराधीकरण हो रहा है।

विधिक मुद्दा	वर्तमान वैधानिक स्थिति	व्यावहारिक अंतर्विरोध
सहमति की आयु	पॉक्सो के तहत 18 वर्ष पूर्ण होना अनिवार्य	16-18 वर्ष के किशोरों की आपसी सहमति का अपराधीकरण
विवाह का झांसा	भारतीय न्याय संहिता में इसे अपराध माना गया है	स्वतंत्र सहमति और धोखे के मध्य बारीक रेखा सिद्ध करना कठिन
वैवाहिक बलात्कार	अपवाद के रूप में पत्नी की सहमति को नजरअंदाज किया गया	व्यक्तिगत स्वायत्तता और दैहिक अधिकारों का सीधा उल्लंघन

इसके अतिरिक्त, आपसी सहमति से बने संबंधों के टूटने के पश्चात्, "शादी के झूठे वादे के तहत यौन संबंध" को लेकर दर्ज होने वाले मुकदमों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। 'सहमति' और 'धोखे' के बीच की सूक्ष्म वैधानिक रेखा को सिद्ध करना आज भी न्यायालयों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

5.3 भेदभाव, सामाजिक कलंक और अमानवीय प्रथाएं

कानून बदल जाने से रातों-रात समाज की मानसिकता नहीं बदलती। पारिवारिक अस्वीकार्यता आज भी सबसे बड़ी समस्या है। अपनी वास्तविक पहचान उजागर करने पर युवाओं को परिवारों द्वारा मानसिक प्रताड़ना, शारीरिक हिंसा या घर से बेदखल किए जाने का सामना करना पड़ता है। कार्यस्थलों, शैक्षणिक संस्थानों और स्वास्थ्य सेवाओं में इस समुदाय को निरंतर उपहास और सूक्ष्म-भेदभाव का सामना करना पड़ता है। सबसे अधिक चिंताजनक बात यह है कि वैज्ञानिक और कानूनी चेतावनियों के बावजूद, आज भी कई रूढ़िवादी परिवारों द्वारा समलैंगिकता को एक 'बीमारी' मानकर 'कनवर्जन थेरेपी' (रूपांतरण चिकित्सा) जैसी अमानवीय, अवैज्ञानिक और क्रूर प्रथाओं का सहारा लिया जाता है।

6. डिजिटल युग में निजता, डेटा सुरक्षा और यौन अधिकार

सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र प्रसार और डिजिटल युग ने जहाँ एक तरफ यौन अल्पसंख्यक समुदाय को अभिव्यक्ति और जुड़ाव का एक अभूतपूर्व मंच प्रदान किया है, वहीं उनके यौन अधिकारों और निजता के समक्ष अत्यंत जटिल और अदृश्य खतरे भी उत्पन्न कर दिए हैं।

डेटिंग ऐप्स और सोशल मीडिया के माध्यम से समलैंगिक व्यक्तियों को निशाना बनाने वाले संगठित साइबर गिरोह सक्रिय हो चुके हैं। ये गिरोह जाली प्रोफाइल बनाकर व्यक्तियों को मिलने बुलाते हैं और फिर उनकी यौन पहचान उजागर करने (आउटिंग) की धमकी देकर ब्लैकमेल या जबरन वसूली करते हैं। सामाजिक कलंक, पारिवारिक अस्वीकृति और पुलिस तंत्र की असंवेदनशीलता के भय से पीड़ित व्यक्ति अक्सर न्याय की गुहार भी नहीं लगा पाते, जिससे वे निरंतर मानसिक प्रताड़ना का शिकार होते हैं। इसके साथ ही, डिजिटल मंचों पर डेटा निजता का हनन एक गंभीर मुद्दा बन गया है। भारत के डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम (डीपीडीपी एक्ट, 2023) के आलोक में व्यक्ति के निजी डेटा की सुरक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है। किसी व्यक्ति की स्पष्ट सहमति के बिना उसकी डिजिटल यौन पहचान, निजी तस्वीरें या चैट को सार्वजनिक कर देना उसके अनुच्छेद 21 के तहत निजता के अधिकार का घोर उल्लंघन है। ऑनलाइन ट्रोलिंग, घृणास्पद भाषण और साइबर बुलिंग आज के समय में इस समुदाय की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और उनके मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे गहरा आघात है, जिसे रोकने के लिए वर्तमान साइबर कानूनों में लक्षित संशोधनों की तत्काल आवश्यकता है।

7. निष्कर्ष एवं भविष्य का मार्ग (नीतिगत अनुशंसाएं)

प्रस्तुत शोध अध्ययन भारतीय समाज में विधि, सहमति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच के जटिल अंतर्संबंधों का समग्र और गहन मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इस विस्तृत विश्लेषण से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि न्यायपालिका द्वारा धारा 377 का निरसन केवल एक औपनिवेशिक दंडात्मक कानून से मुक्ति थी, यह वास्तविक सामाजिक समानता की अंतिम मंजिल नहीं है। अपूर्ण नागरिकता की इस वर्तमान स्थिति में, जब तक किसी समलैंगिक जोड़े को अपने साथी के साथ विवाह करने, संयुक्त संपत्ति रखने, बच्चे गोद लेने या चिकित्सा आपातकाल में विधिक निर्णय लेने का हक नहीं मिलता, तब तक उन्हें प्राप्त समानता अधूरी है। इस विधिक और सामाजिक अंतराल को पाटने के लिए निम्नलिखित सुधार अनिवार्य हैं:

7.1 विधिक और वैधानिक सुधार

सर्वप्रथम, भारत की संसद को 'सुप्रियो' मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों और

कार्यपालिका के आश्वासनों का पालन करते हुए एक नए 'नागरिक सह-जीवन संरक्षण अधिनियम' का प्रारूप तैयार करना चाहिए। यह कानून समलैंगिक जोड़ों को विवाह के समान ही बीमा, बैंकिंग, स्वास्थ्य निर्णय और संयुक्त संपत्ति के अधिकार प्रदान करे।

द्वितीय, पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत सहमति की आयु से जुड़े अंतर्विरोधों को सुलझाने के लिए विधि आयोग की सिफारिशों के अनुरूप 'रोमियो-जूलियट क्लॉज' जैसी व्यवस्था पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए, ताकि 16 से 18 वर्ष के किशोरों के बीच पूर्ण आपसी सहमति से बने संबंधों को गंभीर बलात्कारी मुकदमों से बचाया जा सके। इसके अतिरिक्त, यौन सहमति के अधिकार को पूर्ण बनाने के लिए वैवाहिक बलात्कार को भारतीय न्याय संहिता के तहत अपराध की श्रेणी में शामिल किया जाना नितांत आवश्यक है।

7.2 नीतिगत और प्रशासनिक उपाय

लक्षित क्षेत्र	अनुशंसित सुधारात्मक उपाय	अपेक्षित परिणाम
चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	'कनवर्जन थेरेपी' पर पूर्ण कानूनी प्रतिबंध एवं लाइसेंस रद्दीकरण	अवैज्ञानिक प्रताड़ना से मुक्ति एवं मानसिक स्वास्थ्य संरक्षण
सामाजिक सुरक्षा	राज्य व जिला स्तर पर 'गरिमा गृह' (सुरक्षित आश्रय) की स्थापना	प्रताड़ित युवाओं को विधिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक संबल
कानून प्रवर्तन	पुलिस एवं न्यायिक अधिकारियों के लिए अनिवार्य संवेदीकरण प्रशिक्षण	पूर्वाग्रह-रहित न्याय प्रणाली एवं पीड़ित-केंद्रित दृष्टिकोण
डिजिटल सुरक्षा	राज्य साइबर सेल में अल्पसंख्यक सुरक्षा हेतु विशेष इकाई का गठन	डेटिंग ऐप आधारित ब्लैकमेलिंग एवं साइबर अपराधों पर रोक

भारत सरकार और राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग को देश भर में 'कनवर्जन थेरेपी' को तत्काल प्रभाव से संज्ञेय अपराध घोषित करते हुए पूर्णतः प्रतिबंधित करना चाहिए। गृह मंत्रालय के सहयोग से प्रत्येक राज्य की साइबर सेल में एक विशेष विंग होनी चाहिए, जो डिजिटल युग के नए खतरों से इस समुदाय की रक्षा कर सके।

7.3 शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक उत्तरदायित्व

परिवर्तन की वास्तविक शुरुआत केवल अदालतों के कक्षों या संसद के गलियारों से नहीं, बल्कि परिवारों के भीतर से होनी चाहिए। स्कूल और कॉलेज स्तर पर शिक्षा के पाठ्यक्रम में 'सहमति', 'निजता' और 'जेंडर विविधता' को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। बच्चों को प्रारंभिक अवस्था से ही व्यक्तिगत

सीमाओं और स्वतंत्र सहमति के महत्व की वैज्ञानिक शिक्षा दी जानी चाहिए। निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में 'विविधता और समावेशन' नीतियों को कठोरता से लागू किया जाए ताकि रोजगार के समान और सम्मानजनक अवसर सुनिश्चित हो सकें।

अंततः, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "समलैंगिकता, सहमति और विधि" का यह परिवर्तनशील परिदृश्य किसी एक विशिष्ट वर्ग के अधिकारों का विषय मात्र नहीं है, बल्कि यह भारत के एक परिपक्व, आधुनिक और मानवीय लोकतंत्र बनने की सर्वोच्च परीक्षा है। भारत का प्राचीन दर्शन, साहित्य और संस्कृति सदैव से विविधता, समावेशिता और तरलता के प्रति अत्यंत उदार रहे हैं। समाज को अब 'सामाजिक नैतिकता' के संकीर्ण और औपनिवेशिक दृष्टिकोण का पूर्ण रूप से त्याग कर 'संवैधानिक नैतिकता' को आत्मसात करना होगा। जब एक आम भारतीय परिवार अपने बच्चे की नितांत व्यक्तिगत पहचान को बिना किसी झिझक, अपराधबोध या शर्म के खुले हृदय से स्वीकार कर लेगा, केवल तभी इस राष्ट्र में स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व का महान संवैधानिक संकल्प अपने वास्तविक और परिपूर्ण अर्थों में चरितार्थ हो सकेगा। अकादमिक शोध और विधिक विमर्श की यह निरंतरता इसी दिशा में एक सार्थक प्रयास है।

संदर्भ सूची

न्यायिक निर्णय

- के.एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017)
- नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018)
- नालसा (NALSA) बनाम भारत संघ (2014)
- लॉरेंस बनाम टेक्सस (2003)
- सुप्रियो बनाम भारत संघ (2023)
- ओबेरगेफेल बनाम हॉर्जेस (2015)

अधिनियम एवं कानून

- डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम (डीपीडीपी एक्ट), 2023 (भारत)
- भारतीय दंड संहिता, 1860 (भारत)
- यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (पॉक्सो) अधिनियम (भारत)
- सिविल मैरिज एक्ट, 2005 (कनाडा)
- सिविल यूनियन्स एक्ट, 2006 (दक्षिण अफ्रीका)

- मैरिज (सेम सेक्स कपल्स) एक्ट, 2013 (यूनाइटेड किंगडम)
- रिस्पेक्ट फॉर मैरिज एक्ट, 2022 (संयुक्त राज्य अमेरिका)

रिपोर्ट एवं अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज़

- भारत का विधि आयोग (283वीं रिपोर्ट)
- मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948)
- योग्याकार्ता सिद्धांत (2006)

